Original Article
ISSN (Online): 2350-0530
ISSN (Print): 2394-3629

International Journal of Research - GRANTHAALAYAH
December 2024 12(12), 119–128

ROLE AND IMPACT OF EDUCATIONAL RITUALS IN INDIAN EDUCATION SYSTEM

भारतीय शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों की भूमिका और प्रभाव

Dr. Ravindra Kumar [1]

[1] Principal, Teacher Training College, Industrial Area, Gaya, Bihar, India

Received 25 October 2024
Accepted 27 November 2024
Published 31 December 2024

DOI
10.29121/granthaalayah.v12.i12.2024.6055

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: The role of educational sanskars in the Indian education system has been very important, because they not only provide knowledge, but also inculcate morality, culture and social values in the students. The purpose of education is not limited to academic achievement, but it helps in the overall development of the individual. Educational sanskars develop discipline, dedication, tolerance, and ethical conduct in students, so that they can become responsible citizens of the society. In Indian traditions, from the Gurukul system to the modern education system, the influence of sanskar-based education can be clearly seen. In the current context, due to globalization and technological advancement, changes are taking place in the education system, due to which the role of educational sanskars has become more relevant. Educational sanskars can be inculcated in students through moral education, education of human values, and co-curricular activities. This research studies the historical and modern perspective of educational sanskars in the Indian education system and analyzes how these sanskars contribute to the personality development of students and social harmony.

Hindi: भारतीय शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, क्योंकि ये न केवल ज्ञान प्रदान करने का कार्य करते हैं, बल्कि विद्यार्थियों में नैतिकता, संस्कार और सामाजिक मूल्यों का भी संचार करते हैं। शिक्षा का उद्देश्य केवल अकादमिक उपलब्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के संपूर्ण विकास में सहायक होती है। शैक्षिक संस्कार छात्रों में अनुशासन, समर्पण, सहिष्णुता, एवं नैतिक आचरण को विकसित करते हैं, जिससे वे समाज के उत्तरदायी नागरिक बन सकें। भारतीय परंपराओं में गुरुकुल प्रणाली से लेकर आधुनिक शिक्षा व्यवस्था तक, संस्कार आधारित शिक्षा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के कारण शिक्षा प्रणाली में बदलाव हो रहे हैं, जिससे शैक्षिक संस्कारों की भूमिका और अधिक प्रासंगिक हो गई है। नैतिक शिक्षा, मानवीय मूल्यों की शिक्षा, और सह-अभ्यासिक गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों में शैक्षिक संस्कारों का समावेश किया जा सकता है। यह शोध भारतीय शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों के ऐतिहासिक और आधुनिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करता है तथा यह विश्लेषण करता है कि ये संस्कार विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक समरसता में किस प्रकार योगदान देते हैं।

Keywords: Indian Knowledge System, Educational Sanskar, Character Building, Social Values, National Education Policy, भारतीय ज्ञान प्रणाली, शैक्षिक संस्कार, चरित्र निर्माण, सामाजिक मूल्य, राष्ट्रीय शिक्षा नीति

1. प्रस्तावना

ज्ञान, विज्ञान और जीवन दर्शन की समग्रता से भारतीय ज्ञान प्रणाली का विकास हुआ है। जिसका विस्तार अनुभव, अवलोकन, अनुसंधान, अनुप्रयोग और विश्लेषण से संभव हुआ है। भारतीय जान प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का विशेष महत्व है। शैक्षिक संस्कारों का अर्थ होता है शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को ज्ञान, नैतिकता, सामाजिक मूल्यों और सही व्यवहार की सीख प्राप्त कराना। इस परंपरा ने हमारी शिक्षा, कला, प्रशासन, कानून, न्याय, स्वास्थ्य, विनिर्माण और वाणिज्य को प्रभावित किया है। भारत की बौद्धिक

एवं आध्यात्मिक समृद्धि में वैविध्यपूर्ण तथा व्यापक ज्ञान प्रणाली का अहम् योगदान रहा है। गणित, विज्ञान, धर्मशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र से लेकर खगोलशास्त्र और गहन मौखिक परम्पराओं का समावेश होकर एवं शैक्षिक संस्कारों से परिष्कृत होकर भारतीय ज्ञान का निर्माण हुआ है।

गीता में उधृत 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" अर्थात ज्ञान से पवित्र संसार में कुछ भी नहीं' है एवं 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात विद्या वही है जो मुक्त करे। भारतीय ज्ञान प्रणाली प्राणी मात्र के कल्याण एवं उत्थान की शिक्षा देती है। चरित्र निर्माण से लेकर मनुष्य के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य भारतीय शिक्षा में निहित है। भारतीय ज्ञान संस्कार का अर्थ नितनूतन चिरपुरातन है। विवेक प्रदान करने के सर्वश्रेष्ठ माध्यम के रूप में ज्ञानार्जन ही रहा है। वैदिक कालीन समाज में मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में ज्ञान की प्रतिष्ठा सर्वोपरि मानी जाती रही है। भारतीय समाज में शिक्षा को सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में देखा जाता है। शिक्षा परिवार, समाज और राष्ट्र का साझा दायित्व है। यही भारतीय ज्ञान प्रणाली का संस्कार है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय मनीषी अपने विविध उत्तरदायित्वों के साथ शिक्षाशास्त्री के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। भारतीय समाज में ज्ञान को सबसे पवित्र माना गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य और लक्ष्य भी मनुष्य का सर्वांगीण विकास से ही जुड़ा है।

प्रत्येक मनुष्य जन्म के साथ कुछ गुण और कुछ अवगुण लेकर पैदा होता है। उस पर पूर्व जन्मों के संस्कार भी पड़ते हैं ऐसी मान्यता हिन्दू धर्म की है। अतः आयु वृद्धि के साथ-साथ उस पर नये संस्कार भी पड़ते रहते हैं। भारतीय जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। संस्कार शब्द की उत्पति 'कृ' धातु में सम उपसर्ग लगाकर की गयी है। इसका अर्थ है-शुद्धि, परिष्कार, सुधार एवं मन, रुचि, आचार-विचार को परिष्कृत तथा उन्नत करने का कार्य। वास्तव में संस्कृति शब्द संस्कार से बना है। जिसका अर्थ है-परिमार्जित, परिष्कृत सुधारा हुआ, ठीक किया हुआ। अतः जीवन की बहुमूल्य विशिष्टता, सम्पदा और चरित्र निर्माण का आधार संस्कार है।' इन अर्थों में मानव में जो दोष हैं, उनका शोधन करने एवं उन्हें सुसंस्कृत करने के लिए ही संस्कारों का प्रावधान किया हुआ है। संस्कारों के द्वारा मानवीय मन को एक विशिष्ट वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर निर्मल, सन्तुलित एवं सुसंस्कृत बनाया जाता है। जीवन में काम आने वाले सत्यवृत्तियों का बीजारोपण भी इन संस्कारों के समय होता है। यदि किसी बालक के सभी संस्कार ठीक रीति से समुचित वातावरण में किये जायें, तो उसका व्यक्तित्व सुविकसित होता है। संस्कार पद्धति के द्वारा उसके मनोविकारों का निराकरण कर उसकी सृजनात्मक शक्ति को बढ़ावा देता है। अतः पुराने संस्कारों को प्रभावित करके उनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन कर अनुकूल संस्कारों का निर्माण करने की प्रक्रिया संस्कार कहलाती है।"

2. शैक्षिक संस्कार

शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा के माध्यम से न केवल बौद्धिक और व्यावसायिक कौशल विकसित होते हैं, बल्कि नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्तरदायित्व और चरित्र निर्माण की प्रक्रिया भी सशक्त होती है। इस प्रक्रिया में शैक्षिक संस्कारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि ये समाज में आदर्श नागरिकों के निर्माण में सहायक होते हैं। शैक्षिक संस्कार का तात्पर्य उन नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों से है जो शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में विकसित किए जाते हैं। ये संस्कार उन्हें न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में अनुशासित और सद्गुणी बनाते हैं, बल्कि समाज और राष्ट्र के प्रति उनकी जिम्मेदारियों का भी बोध कराते हैं।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्राचीन काल से ही शैक्षिक संस्कारों पर विशेष बल दिया जाता रहा है। गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्र केवल शास्त्रों का अध्ययन ही नहीं करते थे, बल्कि उन्हें नैतिकता, विनम्रता, सहिष्णुता और सेवा जैसे गुणों की भी शिक्षा दी जाती थी। शिक्षकों और गुरुओं द्वारा नैतिक आचरण, अनुशासन, ईमानदारी और सामाजिक सेवा का जो पाठ पढ़ाया जाता था, वह विद्यार्थियों के संपूर्ण जीवन को प्रभावित करता था। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी नैतिक शिक्षा को महत्व दिया जाता है, लेकिन बदलते सामाजिक और वैश्विक परिदृश्य में इसकी भूमिका सीमित होती जा रही है।

शैक्षिक संस्कारों का महत्व इसलिए भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि वे छात्रों को सही और गलत का भेद समझने में मदद करते हैं। वर्तमान समय में जब समाज में नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है, तब शिक्षा

के माध्यम से नैतिकता, सहिष्णुता, सहयोग और कर्तव्यनिष्ठा जैसी विशेषताओं को विकसित करने की आवश्यकता अधिक महसूस की जा रही है। यदि विद्यार्थी केवल शैक्षिक रूप से कुशल हों लेकिन उनके भीतर नैतिकता और सामाजिक मूल्यों की कमी हो, तो वे समाज के लिए हानिकारक भी साबित हो सकते हैं। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास तक सीमित न होकर व्यक्ति को एक संतुलित और आदर्श नागरिक बनाना भी होना चाहिए।

शैक्षिक संस्कारों का समावेश पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति और विद्यालयी वातावरण के माध्यम से किया जा सकता है। शिक्षकों की भूमिका इसमें अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे न केवल विषय का ज्ञान देते हैं, बल्कि अपने आचरण से भी विद्यार्थियों को प्रेरित करते हैं। विद्यालयों में नैतिक शिक्षा, योग, ध्यान, सांस्कृतिक गतिविधियों और सामाजिक कार्यों को सम्मिलित करके शैक्षिक संस्कारों में वृद्धि की जा सकती है। इसके अलावा परिवार भी शैक्षिक संस्कारों के विकास में सहायक होता है, क्योंकि बच्चे अपने घर के वातावरण से बहुत कुछ सीखते हैं।

आज की शिक्षा प्रणाली में वैश्वीकरण, आधुनिक तकनीकी प्रगति और प्रतिस्पर्धा के कारण नैतिक मूल्यों और शैक्षिक संस्कारों की अनदेखी की जा रही है। अधिकांश शैक्षणिक संस्थान केवल परीक्षा परिणाम और करियर उन्मुख शिक्षा पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जिससे छात्रों में नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना कमजोर हो रही है। यह आवश्यक हो गया है कि पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को पुनः प्राथमिकता दी जाए और शिक्षा प्रणाली को केवल सैद्धांतिक ज्ञान देने के बजाय संस्कारित शिक्षा की ओर भी अग्रसर किया जाए। यदि शैक्षिक संस्कारों को शिक्षा प्रणाली में उचित स्थान दिया जाए, तो यह समाज के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है और भावी पीढ़ी को एक नैतिक और सशक्त दिशा में ले जा सकता है।

3. शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों की भूमिका

शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है। शिक्षा के माध्यम से न केवल बौद्धिक और व्यावसायिक कौशल विकसित होते हैं, बल्कि नैतिक मूल्यों, सामाजिक दायित्वों और चारित्रिक निर्माण की प्रक्रिया को भी सशक्त किया जाता है। इस प्रक्रिया में शैक्षिक संस्कारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे छात्रों को एक जिम्मेदार नागरिक और सद्गुणी व्यक्ति बनने में सहायता करते हैं। शैक्षिक संस्कारों का अर्थ उन नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों से है, जो शिक्षा प्रणाली के माध्यम से विद्यार्थियों में विकसित किए जाते हैं। ये संस्कार न केवल उनके व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन, ईमानदारी और सहिष्णुता जैसी विशेषताओं का विकास करते हैं, बल्कि समाज और राष्ट्र के प्रति उनकी जिम्मेदारियों को भी स्पष्ट करते हैं।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्राचीन काल से ही शैक्षिक संस्कारों पर विशेष बल दिया जाता रहा है। गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थियों को केवल शास्त्रों का अध्ययन ही नहीं कराया जाता था, बल्कि उनके भीतर नैतिकता, आत्मनिर्भरता, सहिष्णुता और सेवा भावना को भी विकसित किया जाता था। गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से छात्रों को आदर्श नागरिक बनने की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षकों और गुरुओं द्वारा नैतिक आचरण, अनुशासन, सहयोग और सामाजिक सेवा के जो पाठ पढ़ाए जाते थे, वे जीवनभर विद्यार्थियों को प्रेरित करते थे। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी नैतिक शिक्षा को महत्व दिया जाता है, लेकिन बढ़ती प्रतिस्पर्धा, वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के कारण इसकी भूमिका सीमित होती जा रही है।

शैक्षिक संस्कारों का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि वे छात्रों को सही और गलत का भेद समझने में सहायता करते हैं। वर्तमान समय में जब समाज में नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है, तब शिक्षा प्रणाली के माध्यम से सहिष्णुता, सहयोग, दया और कर्तव्यनिष्ठा जैसी विशेषताओं को विकसित करने की आवश्यकता पहले से अधिक महसूस की जा रही है। यदि विद्यार्थी केवल शैक्षिक रूप से कुशल हों लेकिन उनके भीतर नैतिकता और सामाजिक मूल्यों की कमी हो, तो वे समाज के लिए हानिकारक भी साबित हो सकते हैं। इसलिए, शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास तक सीमित न होकर व्यक्ति को एक संतुलित और आदर्श नागरिक बनाना भी होना चाहिए।

शैक्षिक संस्कारों के समावेश के लिए शिक्षा प्रणाली को एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना होगा। पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा, सह-अभ्यासिक गतिविधियाँ, योग, ध्यान, सांस्कृतिक कार्यक्रम और सामाजिक

कार्यों को सम्मिलित करके विद्यार्थियों में शैक्षिक संस्कारों का विकास किया जा सकता है। शिक्षकों की भूमिका इसमें अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे न केवल विषय का ज्ञान देते हैं, बल्कि अपने आचरण से भी विद्यार्थियों को प्रेरित करते हैं। विद्यालयों में नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाकर छात्रों में आत्म-अनुशासन, सहिष्णुता, ईमानदारी और परोपकार की भावना को विकसित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, परिवार और समाज भी शैक्षिक संस्कारों के निर्माण में सहायक होते हैं, क्योंकि बच्चे अपने परिवेश से बहुत कुछ सीखते हैं।

आज की शिक्षा प्रणाली में वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धा के कारण नैतिक मूल्यों की अनदेखी की जा रही है। अधिकांश शैक्षणिक संस्थान केवल परीक्षा परिणाम और करियर उन्मुख शिक्षा पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जिससे छात्रों में नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना कमजोर हो रही है। यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों को पुनः प्राथमिकता दी जाए और शिक्षा प्रणाली को केवल सैद्धांतिक ज्ञान देने के बजाय संस्कारित शिक्षा की ओर भी अग्रसर किया जाए। यदि शैक्षिक संस्कारों को शिक्षा प्रणाली में उचित स्थान दिया जाए, तो यह समाज के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है और भविष्य की पीढ़ी को नैतिकता और सद्गुणों से परिपूर्ण बना सकता है।

4. आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का स्थान

आधुनिक शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य छात्रों को केवल शैक्षणिक ज्ञान प्रदान करना नहीं है, बल्कि उन्हें एक सशक्त, नैतिक और जिम्मेदार नागरिक बनाना भी है। शिक्षा के माध्यम से बौद्धिक विकास के साथ-साथ सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश आवश्यक होता है। शैक्षिक संस्कार वे नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य होते हैं, जो शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में विकसित किए जाते हैं, जिससे वे एक अच्छे व्यक्तित्व और समाजोपयोगी नागरिक बन सकें। किंतु वर्तमान समय में तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धा के कारण आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का स्थान सीमित होता जा रहा है, जो समाज और राष्ट्र के लिए एक चिंता का विषय बन गया है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का अत्यधिक महत्व था। गुरुकुल प्रणाली में छात्र न केवल शास्त्रों का अध्ययन करते थे, बल्कि उनमें नैतिकता, अनुशासन, गुरु-भक्ति, समाजसेवा और आत्मनिर्भरता जैसी विशेषताओं को विकसित किया जाता था। शिक्षा केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसका उद्देश्य संपूर्ण व्यक्तित्व विकास था। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में, हालांकि नैतिक शिक्षा और मूल्य-आधारित शिक्षा पर बल दिया जाता है, लेकिन बदलते सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य के कारण यह शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से परीक्षा परिणामों, करियर उन्नति और व्यावसायिक सफलता पर केंद्रित हो गई है। इस बदलाव के कारण विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही है।

आज की शिक्षा प्रणाली में तकनीकी विकास के कारण शिक्षा के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन हुआ है। डिजिटल शिक्षा, ऑनलाइन शिक्षण, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधारित लर्निंग मॉडल के कारण छात्रों को नई तकनीकों से परिचित होने का अवसर मिला है। हालाँकि, इस प्रगति ने शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाया है, लेकिन इसके साथ ही नैतिक मूल्यों और शैक्षिक संस्कारों के विकास की चुनौती भी उत्पन्न हुई है। अब विद्यार्थी मुख्य रूप से सूचना प्राप्त करने और करियर निर्माण की ओर अधिक ध्यान देते हैं, जबकि नैतिकता, सहिष्णुता, सामाजिक सहयोग और मानवता जैसे मूल्यों का स्थान गौण होता जा रहा है।

शैक्षिक संस्कारों के समावेश के लिए आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए जाने चाहिए। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों को पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा, नैतिक मूल्य आधारित विषयों, और सह-अभ्यासिक गतिविधियों को अनिवार्य रूप से शामिल करना चाहिए। शिक्षकों को केवल शैक्षणिक ज्ञान देने तक सीमित न रहकर विद्यार्थियों के नैतिक और सामाजिक विकास पर भी ध्यान देना चाहिए। इसके लिए समाज में भी एक सकारात्मक वातावरण निर्मित करना आवश्यक है, जिसमें परिवार, शिक्षण संस्थान और सामाजिक संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों को उचित स्थान दिए बिना एक संतुलित और समग्र शिक्षा संभव नहीं है। यदि शिक्षा केवल बौद्धिक और व्यावसायिक दक्षता तक सीमित रह जाए और उसमें

नैतिकता, अनुशासन, और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का अभाव हो, तो समाज में नैतिक पतन और असंतोष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों को पुनः सुदृढ़ किया जाए और विद्यार्थियों को न केवल एक सफल, बल्कि एक नैतिक और समाजोपयोगी नागरिक के रूप में विकसित किया जाए।

5. शैक्षिक संस्कारों के अभाव में समाज पर प्रभाव

शिक्षा केवल ज्ञान और कौशल प्राप्त करने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा के माध्यम से छात्रों में अनुशासन, नैतिकता, सहिष्णुता, परोपकार, और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे गुण विकसित होते हैं। इन्हीं गुणों को शैक्षिक संस्कार कहा जाता है, जो किसी भी सभ्य और सुसंस्कृत समाज की नींव होते हैं। यदि शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों की कमी हो, तो यह केवल व्यक्तियों के स्तर पर ही नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज और राष्ट्र के विकास पर भी नकारात्मक प्रभाव डालती है।

शैक्षिक संस्कारों के अभाव में समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होने लगता है। जब शिक्षा केवल भौतिक सफलता और आर्थिक उन्नति पर केंद्रित हो जाती है, तो नैतिकता और ईमानदारी जैसे गुण गौण हो जाते हैं। यह प्रवृत्ति भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता और नैतिक पतन को जन्म देती है। समाज में स्वार्थ, अनैतिक प्रतिस्पर्धा, और बेईमानी बढ़ने लगती है, जिससे सामाजिक ताने-बाने में दरार आने लगती है। जब व्यक्ति केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए शिक्षा प्राप्त करता है और उसमें नैतिकता और मानवता का अभाव होता है, तो वह समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

शैक्षिक संस्कारों के अभाव का सबसे बड़ा प्रभाव युवाओं पर पड़ता है। आज के समय में वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के कारण शिक्षा प्रणाली अत्यधिक व्यावसायिक हो गई है। नैतिक शिक्षा और जीवन-मूल्यों की उपेक्षा के कारण युवा वर्ग नैतिक दिशाहीनता का शिकार हो रहा है। वे केवल अपनी व्यक्तिगत सफलता को ही महत्व देते हैं और सामाजिक सरोकारों से दूर होते जा रहे हैं। इससे समाज में संवेदनहीनता, अपराध, और हिंसा जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। पारस्परिक सम्मान, सहयोग और भाईचारे की भावना कमजोर होती जा रही है, जिससे सामाजिक संतुलन बिगड़ता है।

इसके अतिरिक्त, शैक्षिक संस्कारों के अभाव में सामाजिक असमानता और भेदभाव भी बढ़ सकता है। जब शिक्षा प्रणाली केवल व्यावसायिक सफलता पर केंद्रित हो जाती है और नैतिक मूल्यों का स्थान कम हो जाता है, तो समाज में अमीर-गरीब के बीच की खाई और गहरी हो जाती है। संपन्न वर्ग अपने संसाधनों का दुरुपयोग कर समाज पर वर्चस्व कायम करने की कोशिश करता है, जबकि वंचित वर्ग और अधिक हाशिए पर चला जाता है। यदि शिक्षा के माध्यम से समानता, सहानुभूति, और सामाजिक न्याय की भावना को नहीं बढ़ाया जाए, तो समाज में अशांति और विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

शैक्षिक संस्कारों की कमी का एक और गंभीर परिणाम परिवार और सामाजिक संबंधों पर पड़ता है। जब शिक्षा प्रणाली में नैतिकता और जीवन-मूल्यों की अनदेखी की जाती है, तो पारिवारिक और सामाजिक संबंध कमजोर होने लगते हैं। माता-पिता और बच्चों के बीच सम्मान और आपसी समझ की भावना कम हो जाती है, जिससे परिवार टूटने लगते हैं। समाज में अकेलापन, अवसाद, और मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ बढ़ने लगती हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि यदि शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का अभाव होगा, तो समाज में नैतिक पतन, असमानता, अपराध, और अविश्वास की भावना बढ़ेगी। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षा केवल रोजगारपरक और व्यावसायिक न होकर नैतिक और सामाजिक मूल्यों को भी बढ़ावा दे। शिक्षकों, अभिभावकों और समाज को मिलकर यह सुनिश्चित करना होगा कि शिक्षा प्रणाली में नैतिकता, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व को उचित स्थान मिले, जिससे एक सशक्त, समरस और संस्कारित समाज का निर्माण हो सके।

6. भारतीय ज्ञान प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का विवेचन

संस्कारों का महत्त्वः मानव जीवन में संस्कारों का अत्यधिक महत्त्व है। संस्कारों की शुद्धि के लिए नैतिक मूल्यो का होना आवश्यक है। संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य का चरित्र निर्माण होता है और विचारों के अनुरूप संस्कार चरित्र की वह धुरी है, जिस पर मनुष्य का जीवन सुख, शान्ति और मान-सम्मान को प्राप्त करता है। संस्कार के द्वारा मानव चरित्र में सदगुणों का संचार होता है, दोष, दुर्गुण दूर होते हैं। मानव जीवन को जन्म से लेकर मृत्यु तक सार्थक बनाने तथा सत्य-शोधन की अभिनव व्यवस्था का नाम सरकार है। संस्कारों का मूल प्रयोजन आध्यात्मिक भी है तथा नैतिक विकास का भी है क्योंकि मानव जीवन को अपवित्र एवं उत्कृष्ट बनाने वाले आध्यात्मिक उपचार का नाम संस्कार है।'

श्रेष्ठ संस्कारवान मानव का निर्माण ही संस्कारों का मुख्य उद्देश्य है। संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य में शिष्टाचार एवं सभ्य आचरण की प्रवृत्ति का विकास होता है। इस अर्थ में सर्वसाधारण के मानसिक, चारित्रिक एवं भावनात्मक विकास के लिए सर्वांग सुन्दर विधान संस्कारों का है।

संस्कार एक सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अभ्यास या प्रक्रिया को सूचित करता है। यह एक शब्दिक रूप से व्यक्ति के जीवन में नियमित रूप से किया जाने वाले धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यों को संदर्भित करता है। संस्कारों का महत्व विभिन्न समाजों और संस्कृतियों में भिन्न हो सकता है, लेकिन सामान्यतः इन्हें व्यक्ति के धार्मिक और सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। संस्कार व्यक्ति को सामाजिक नियमों, मूल्यों और धार्मिक अभ्यासों के साथ परिचित कराते हैं। मानव जीवन के साथ संस्कारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह बात भारतीय सन्दर्भ में और भी समीचीन है। मन, क्रम, वचन को परिष्कृत तथा उन्नत करने का कार्य संस्कारों के माध्यम से ही संभव है। प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली मानवीय मूल्य केन्द्रित रही है। वैसे तो भारतीय सन्दर्भ में मानव जीवन आरम्भ से पूर्णता के क्रम को 16 संस्कारों के माध्यम से नियोजित किया गया है। लेकिन यह शोध पत्र शैक्षिक संस्कार या ज्ञानार्जन के प्राचीन एवं अर्वाचीन सन्दर्भों पर केन्द्रित है। यह विषय ऐसे समय में जबकि भारतीय शिक्षा निति जिसे राष्ट्रीय शिक्षा निति 2020 के नाम से जाना जाता है लागू की जा चुकी है, समीचीन है।"

विभिन्न विकार एवं स्वरूप हमारे भारतीय धर्म के अनुसार सोलह संस्कारों द्वारा व्यक्ति के व्यतित्व का परिष्कार किया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति के सोलह संस्कारों में गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमंतोन्नयन संस्कार, जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, चूड़ाकर्म संस्कार (मुंडन संस्कार), कर्णवेध संस्कार, विद्यारंभ संस्कार, उपनयन संस्कार, वेदारंभ संस्कार, केशांत संस्कार, समावर्तन संस्कार, विवाह संस्कार, अंत्येष्टि संस्कार सामिल हैं।

शैक्षिक संस्कारों में मुख्यतः कर्णवेध संस्कार, विद्यारंभ संस्कार, उपनयन संस्कार, वेदारंभ संस्कार, केशांत संस्कार, और समावर्तन जैसे संस्कार ही प्राचीन भारत में शिक्षा ग्रहण करने से पूर्व व्यक्ति को योग्य बनाने के लिए संपन्न किए जाते थे।

1) **कर्णवेध संस्कार:** हिन्दू धर्म संस्कारों में कर्णवेध संस्कार नवम संस्कार है। यह संस्कार कर्णेन्दिय में श्रवण शक्ति की वृद्धि, कर्ण में आभूषण पहनने तथा स्वास्थ्य रक्षा के लिये किया जाता है। विशेषकर कन्याओं के लिये तो कर्णवेध नितान्त आवश्यक माना गया है। इसमें दोनों कानों को वेध करके उसकी नस को ठीक रखने के लिए उसमें सुवर्ण कुण्डल धारण कराया जाता है। इससे शारीरिक लाभ होता है। कर्णवेध-संस्कार उपनयन के पूर्व ही कर दिया जाना चाहिए। इस संस्कार को 6 माह से लेकर 16वें माह तक अथवा 3,5 आदि विषम वर्षों में या कुल की पंरपरा के अनुसार उचित आयु में किया जाता है। इसे स्त्री-पुरुषों में पूर्ण स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व की प्राप्ति के उद्देश्य से कराया जाता है। मान्यता यह भी है कि सूर्य की किरणें कानों के छिद्र से प्रवेश पाकर बालक-बालिका को तेज़ संपन्न बनाती है। बालिकाओं के आभूषण धारण हेतु तथा रोगों से बचाव हेतु यह संस्कार आधुनिक एक्युपंचर पद्धति के अनुरुप एक सशक्त माध्यम भी है। हमारे शास्त्रों में कर्णवेध रहित पुरुष को श्राद्ध का अधिकारी नहीं माना गया है। ब्राह्मण और वैश्य का कर्णवेध चांदी की सुई से, शुद्र का लोहे की सुई से तथा क्षत्रिय और संपन्न पुरुषों का सोने की सुई से करने का विधान है।

कर्णवेध-संस्कार द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) का साही के कांटे से भी करने का विधान है। शुभ समय में, पवित्र स्थान पर बैठकर देवताओं का पूजन करने के पश्चात सूर्य के सम्मुख बालक या बालिका के कानों को निम्नलिखित मंत्र द्धारा अभिंमत्रित करना चाहिए –

भद्रं कर्णेभिः क्षृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

इसके बाद बालक के दाहिने कान में पहले और बाएं कान में बाद में सुई से छेद करें। उनमें कुडंल आदि पहनाएं। बालिका के पहले बाएं कान में, फिर दाहिने कान में छेद करके तथा बाएं नाक में भी छेद करके आभूषण पहनाने का विधान है। मस्तिष्क के दोनों भागों को विद्युत के प्रभावों से प्रभावशील बनाने के लिए नाक और कान में छिद्र करके सोना पहनना लाभकारी माना गया है। नाक में नथुनी पहनने से नासिका-संबधी रोग नहीं होते और सर्दी-खांसी में राहत मिलती है। कानों में सोने की बालियं या झुमकें आदि पहनने से स्त्रीयों में मासिकधर्म नियमित रहता है, इससे हिस्टीरिया रोग में भी लाभ मिलता है।

2) **विद्यारंभ संस्कार:** यह आयु के पांचवें वर्ष में तब सम्पन्न कराया जाता है, जब बालक शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हो जाता है। शिक्षा मात्र शिक्षा न रहकर विद्या बने, इसीलिए गणेश व लक्ष्मी के पूजन के बाद विद्या तथा ज्ञानवर्द्धन करने वाले इस संस्कार को सरस्वती का नमन कर पूर्ण किया जाता है। शिक्षा के उपकरण दवात, कलम, कॉपी, पट्टिका को वेद मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर पूजन किया जाता है। इस क्रिया को परमार्थ प्रयोजन के रूप में किया जाता है। विद्यार्थी गुरु को प्रणाम करता है। बालक श्रेष्ठ मानव बने। बालक पट्टी या कोपी पर लिखता है, तो उस पर अक्षत छुड़वाकर बालक को तिलक लगाकर आशीर्वाद देते हैं। बालक श्रेष्ठ लोकसेवी व नागरिक बने, यही कामना की जाती है। काणे जी अपनी पुस्तक में इस संस्कार का वर्णन करते हुए लिखते है कि विद्यारंभ संस्कार तीसरे वर्ष (चौल संस्कार के समय) से आठ वर्ष (ब्राह्मणों के उपनयन संस्कार के समय) तक बच्चों की शिक्षा के विषय में गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र मौन हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस ओर एक हलका प्रकाश मिलता है। ऐसा उधृत है कि चौल के उपरान्त राजकुमार को लिखना एवं गणित सीखना पड़ता था और उपनयन के उपरान्त उसे वेद, आन्वीक्षिकी (तत्वज्ञान), वार्ता (कृषि एवं घन-विज्ञान) व दण्डनीति (शासन कला) १६ वर्ष तक पढ़नी पड़ती थी और तभी गोदान के बाद उसका विवाह होता था। कालिदास ने लिखा है कि अज ने पहले अक्षर सीखे और तब वह संस्कृत-साहित्य के सिन्धु में उतरा। बाण ने सम्भवतः अर्थशास्त्र की बात ही दुहरायी है। बाण की कादम्बरी में राजकुमार चन्द्रापीड ने विद्यामन्दिर में छः वर्ष की अवस्था में प्रवेश किया और वहाँ १६ वर्ष को अवस्था तक रहकर सभी प्रकार की कलाओं एवं विज्ञानों का अध्ययन किया। उत्तररामचरित में आया है कि कुश एवं लव ने चौल के उपरान्त एवं उपनयन के पूर्व वेद के अतिरिक्त अन्य विद्याएँ सीखी।

ऐसा प्रतीत होता है, कि ईशा की आरंभिक शताब्दियों से विद्यारंभ नामक संस्कार सम्पादित किया जाने लगा था। अपरार्क एवं स्मृतिचन्द्रिका ने मार्कदेवपुराण के श्लोक उधृत करके विद्यारंभ का वर्णन किया है, बच्चे के पांचवे वर्ष कार्तिक शुक्लपक्ष के बारहने दिन से आषाढ़ शुक्ल पक्ष के ११ दिन तक तथा शनिवार और मंगलवार को छोडकर विद्यारंभ संस्कार करना चाहिए। हरि (विष्णु) लक्ष्मी, सरस्वती, सूत्रकारों एवं कुलविद्या की पूजा करके अधि में घृत की आहुतियां देनी चाहिए। इसके उपरान्त दक्षिणा आदि से ब्राह्मणों का सत्कार करना चाहिए। अध्यापक को पूर्व दिशा में तथा बच्चों को पश्चिम दिशा में बैठना चाहिए इसके बाद पठन-पाठ्य करना चाहिए फिर बच्चा ब्राह्मणों का आशीर्वाद ग्रहण करता है।

विश्वामित्र, देवल तथा अन्य ऋषियों की बातें उद्धृत करके संस्कारप्रकाश ने लिखा है कि विद्या पांच वर्ष तथा कम-से-कम उपनयन के पूर्व लेनी चाहिए इसके बाद सरस्वती तथा गणपति की पूजा के उपरान्त गुरु की पूजा करनी चाहिए। आधुनिक काल में लिखना सीखना किसी शुभ मुहूर्त में आरम्भ कर दिया जाता है, यह शुभ मुहुर्त बहुधा आचिन मास के शुक्लपक्ष की विजयादशमी तिथि को पडता है। सरस्वती एवं गणपति के पूजन के उपरान्त गुरु का सम्मान किया जाता है, ओर बच्चा "ओम् नमः सिद्धम्" दुहराता है और पट्टी पर लिखता है। इसके उपरान्त उसे अ, आ... इत्यादि अक्षर सिखाये जाते हैं। संस्काररत्नमाला ने इस संस्कार का 'अक्षरस्वीकार' नाम दिया है, जो उपयुक्त ही है। पारिजात में उद्धृत बातों के अनुसार संस्काररत्नमाला ने होम तथा सरस्वती, हरि, लक्ष्मी, गणपति, सूत्रकारों एवं स्वविद्या के पूजन की चर्चा की है।'

3) **उपनयन संस्कारः** यज्ञोपवीत, अर्थात उपनयन संस्कार दूसरा जन्म है। इस संस्कार में बालक को वैदिक मन्त्रोच्चारों के बीच विधि-विधान द्वारा तीन बंटे हुए धागों की पतली ढोरी धारण करवाई जाती है। इसमें नौ धागे, नौ गुणों (विवेक, पवित्रता, बलिष्ठता, शान्ति, साहस, स्थिरता, धैर्य, कर्तव्य, समृद्धि) प्रतीक माने जाते हैं। यज्ञोपवीतघारी इसे मन्त्रोच्चार के साथ कन्धों पर धारण करते हैं और श्रेष्ठ कार्यों का संकल्प लेते हैं। भारतीय संस्कृति में लिंग, जाति, वर्ण आदि किसी भी प्रकार का भेदभाव किये बिना यज्ञोपवीत कराने की बात कही गयी है। यज्ञोपवीत व शिखा के बिना किसी भी प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण नहीं होता है।

'उपनयन' का अर्थ है "पास या निकट ले जाना" किन्तु किसके पास ले जाना? सम्भवतः आरम्भ में इसका तात्पर्य वा "आचार्य के पास (शिक्षण के लिए) ले जाना।" हो सकता है: इसका तात्पर्य है कि नवशिष्य को विद्यार्थीपन की अवस्था तक पहुंचा देना। कुछ गृह्यसूत्रों से ऐसा आभास मिल जाता है, तब गुरु बच्चे से यह कहलवाता है "मैं ब्रह्मचर्य को प्राप्त हो रहा हूँ। मुझे इसके पास ले चलिए। सविता देवता द्वारा प्रेरित मुझे ब्रह्मचारी होने दीजिए। मानव एवं काठक ने 'उपनयन के स्थान पर 'उपायन' शब्द का प्रयोग किया है। काठक के टीकाकार आदित्यदर्शन ने कहा है कि उपानय, उपनयन, मोन्जीबंधन, बटुकरण, व्रतवन्ध समानार्थक हैं।

इस संस्कार के उद्रम एवं विकास के विषय में कुछ चर्चा हो जाना आवश्यक है, क्योंकि यह संस्कार सब संस्कारों में अति महत्वपूर्ण माना गया है। उपनयन संस्कार का मूल भारतीय एवं ईरानी है। 'उपनयन' शब्द दो प्रकार से समझाया जा सकता है- 1. बच्चे को आचार्य के सन्निकट ले जाना, 2. वह संस्कार या कृत्य जिसके द्वारा बालक आचार्य के पास ले जाया जाता है। पहला वर्ष आरम्भिक है, किन्तु कालान्तर में जब विस्तारपूर्वक यह कृत्य किया जाने लगा तो दूसरा अर्थ भी प्रयुक्त हो गया। आपस्तम्वधर्मसूत्र ने दूसरा अर्थ लिया है आपके अनुसार उपनयन एक संस्कार है जो उसके लिए किया जाता है, जो विद्या सीखना चाहता है, "यह ऐसा संस्कार है जो विद्या सिखाने वाले को गायत्री मन्त्र सिखाकर किया जाता है।" स्पष्ट है, उपनयन प्रमुखता गायत्री उपदेश है। इस विषय में जैमिनि" भी दृष्टव्य है।

4) **वेदारम्भः** यज्ञोपवीत संस्कार के साथ प्राचीनकाल में वेदारम्भ की शिक्षा प्रारम्भ होती थी। वेद जीवन विकास, जीवन एवं परिष्कार के महत्व को दर्शाते है। वेदों की शिक्षा प्रारम्भ करने से पूर्व बालक श्रद्धापूर्वक गुरु का पूजन करता है। इसके बाद उससे भिक्षा मांगने की क्रिया पूर्ण करवायी जाती है। धर्मसूत्र के अनुसार वंश परंपरा से विद्या संपन्न एवं गंभीर व्यक्ति से ही उपनयन संस्कार एवं वेदाध्यापन कराना चाहिए और जब तक वह धर्म मार्ग से च्युत नहीं होता उससे पढ़ते जाना चाहिए। आचार्य को ब्राह्मण, वेद में एकनिष्ठ, धर्मज्ञ, कुलीन शुचि, श्रोत्रिय होना चाहिए, अपनी शाखा में प्रवीण एवं अप्रमानी होना चाहिए आपस्तानधर्मसूत्र ने उसी को श्रोत्रिय कहा है जिसने की एक शाखा पहली है। आपत्काल में अर्थात् जब ब्राह्मण न मिले तब क्षत्रिय या वैश्य को आचार्य बनाना चाहिए, किन्तु विद्यार्थी ऐसे गुरु के चरण नहीं पधार सकता" मनु ने शुभा विद्या (प्रत्यक्ष लाभकारी ज्ञान) के लिए ब्राह्मण की शूद्र से भी सीखने के लिए छूट दी है। यही बात शान्तिपर्व में भी है। मिताक्षरा ने कहा है कि ब्राह्मण द्वारा प्रेरित किये जाने पर ही सक्रिय या वैश्य को शिक्षण कार्य करना चाहिए, अपने मन से नहीं। क्षत्रिय शिक्षण कार्य से अपनी जीविका नहीं चला सकता। शिक्षण कार्य मौखिक था सर्वप्रथम प्रणव, व्याहृतियाँ एवं गायत्री ही पढ़ाई जाती थी इसके उपरांत ही वेद के अन्य भाग पढ़ाये जाते थे।

प्राचीन भारतीय वेदाध्ययन की प्रणाली पर संक्षिप्त विवेचन यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है शांखायनसूर ने वर्णन किया है- गुरु पूर्व या उलर मुख बैठता है, शिष्य उसके दाहिने उत्तराभिमुख बैठता है, यदि दो से अधिक शिष्य ही तो स्थान के अनुसार जैसा चाहें बैठ सकते हैं। शिष्य को उच्चासन पर नहीं बैठना चाहिए और शुरु में साथ उसी आसन पर बैठना चाहिए, उसे अपने पैर नहीं फैलाने चाहिए, अपनी बाह से पटनों को कभी नहीं बैठना चाहिए किसी बस्तु का सहारा भी नहीं लेना चाहिए उसे अपने पाँवों को गोदी में नहीं रखना चाहिए और न उन्हें कुल्हाड़ी की भांति पकड़ना चाहिए। जब शिष्य "उच्चारण कीजिए महोदय कहता है, तब आधा उससे ओम् कहलवाता है और शिष्य को 'ओम्' कहना चाहिए। इसके उपरान्त शिध्य लगातार पढ़ना आरम्भ कर देता है। पढ़ने के उपरान्त शिष्य को गुरु के पाँव छूने चाहिए और कहना चाहिए, महोदय, अब हमने समाप्त कर लिया, यह कहकर चला जाना चाहिए।

5) **केशान्त संस्कारः** इस संस्कार में सिर के तथा शरीर के अन्य भाग के केश बराये जाते हैं। पारस्कर याज्ञवल्क्य एवं मनु" ने केशान्त शब्द का तथा आखलावनगृद्ध एवं अन्य सूने गोदान शब्द का प्रयोग किया है। शतपथ ब्राह्मण में दीक्षा के विषय की चर्चा होते समय कान के उपर सिर के एक भाग के बाल बनाने को गोदान कहा गया है। अधिकांश स्मृतिकारों ने इस संस्कार की १६ वर्ष में करने को कहा है। इस विषय में मतभेद है। बौधायनधर्मसूत्र ने गर्भाधान से ही गणना की है। इसी नियम के अनुसार मिताक्षरा तथा कुल्लूक ने ब्राह्मणों के लिए गर्माधान से १६ वर्ष तथा अपरार्क ने जन्म से १६ वर्ष माना है। केशांत १६वे वर्ष हो जाना चाहिए यदि उपनयन १६ वर्ष के उपरान्त हो तो केशान्त संस्कार किया ही नहीं जायेगा। बालक के केश किसी देवस्थान में उतारे जाते हैं। दूसरे या तीसरे वर्ष में बाल उतारने के बाद शिखाबन्धन होता है।

6) **समावर्तन संस्कारः** वेदाध्ययन के उपरांत का स्नान कर्म तथा गुरु गृह से लौटते समय का संस्कार स्नान वा समावर्तन कहा जाता है। मनु ने स्नान तथा समावर्तन दोनों शब्दों का प्रयोग किया है द्विज गुरु से अज्ञापित होने पर स्नान करके पर लौट सकता है और अपने गृहसूत्र के नियमों के अनुसार किसी कन्या से विवाह कर सकता है अपरार्क ने स्नान एवं समावर्तन में अंतर बताया है-

- स्नान का तात्पर्य है विद्यार्थी जीवन की परिसमाप्ति, अतः जो जीवन भर ब्रह्मचारी रहना चाहता है वह यह संस्कार नही भी कर सकता।
- समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है गुरु गृह से अपने गृह को लौट आना। शिक्षा की समाप्ति पर किया जाने वाला यह संस्कार पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला शिक्षार्थी गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर पूर्ण करता है और अपने परिवार, समाज तथा देश के प्रति सभी कर्तव्यों को पूर्ण करता है।

7. निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में, विशेषतः हिन्दुओं में किये जाने वाले इन संस्कारों का आज भी विशेष महत्त्व है। यद्यपि आज की व्यस्त जिन्दगी में इन संस्कारों का पूर्ण विधि-विधान से पालन नहीं हो पाता, तथापि हिन्दू कुछ बदले हुए स्वरूपों में इसका पालन करते है। वस्तुतः हिन्दू धर्म के ये सरकार मानव व्यक्ति के श्रेष्ठ सन्तुलित व्यक्तित्व के निर्माण में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आधुनिक सभ्यता के प्रभाव में इन संस्कारों का स्वरूप अवश्य ही बदला है, किन्तु ये संस्कार अपने आदर्शों और श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों एवं विश्वास के कारण आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने कि प्राचीन भारतीय संस्कृति में थे। ये संस्कार चरित्र निर्माण के प्रमुख आधार कहे जा सकते हैं। भारतीय संस्कार यह बताते हैं कि जीवन मृत्यु के साथ समाप्त नहीं हो जाता। व्यक्ति निर्माण से ही राष्ट्र निर्माण संभव है, जिसका आधार शिक्षा ही है और रही है।

REFERENCES

AAP 60 MoU 2/214/25-28; Gautam0 711-3; Bo 50 Su 1/2/40-42 and Manu 2/241.
Acharya Lakshmi Chandra, Bharatvarsha Vedic Period Education System, Sanjay Prakashan, Delhi, 1997, pg. 34|
Acharya Lakshmi Chandra, Bharatvarsha Vedic Period Education System, Sanjay Prakashan, Delhi, 1997, pg.203)
Apastambadharmasutra 2/3/6
Apastamvdharmasutra, 1/1/1/19
Economics 175
Geeta 4/38A
Jaimini, 6/1/35
Jha, Dr. Surendra, Ancient Education System, Ashutosh Prakashan, Lucknow, 2004, pg. 67
Kabhed, 10/109/5

Kane, P, V, History of Dharmashastra, (First Part), Hindi Samiti, Lucknow, 2000, pg 206-07)
Manusmriti 2/238
Mishra, Prof. Lokmanya, Ancient Education, Mrigakshi Prakashan, Lucknow, 2011, pg. 84
Raghuvansh 3/28
Rastogi, Smt. Urmila, Manusmriti, Parimal Publications, New Delhi, 2005, pg. 59
Sanskaratnamala pg. 904
Uttarramcharit, Issue 2